International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारतीय राष्ट्रवाद मे सिनेमा की भूमिका

प्रियंक कुमार रोकड़े[1], डॉ. गीता चौधरी[2]

[1]शोधार्थी (इतिहास), [2]प्राध्यापक (इतिहास)
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर

सारांश

भारतीय सिनेमा ने अपने सौ साल से अधिक के इतिहास में न केवल मनोरंजन का साधन बनकर समाज को प्रभावित किया है, बल्कि राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सिनेमा ने भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है । स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सिनेमा ने राष्ट्रवादी भावनाओं को प्रोत्साहित किया और आजादी के बाद भी यह राष्ट्र निर्माण और सामाजिक एकता का माध्यम बना रहा। । औपनिवेशिक दौर में सिनेमा ने भी कई समस्याओं का सामना किया है और सिनेमा का यह संघर्ष उसे भी राष्ट्रवाद के तत्वों से जोड़ता है । यह शोध पत्र भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में सिनेमा की भूमिका का विश्लेषण करता है और इसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभावों को समझने का प्रयास करता है।

बीज शब्द :- सिनेमा, राष्ट्रवाद, स्वतंत्रता, उपनिवेश, समाज, संस्कृति।

"राष्ट्र एक आत्मा और साझा स्मृतियों से बना है। यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है जो साझा पीड़ा और बलिदान के माध्यम से उत्पन्न होती है।"

- अर्नेस्ट रेनन

राष्ट्रवाद एक ऐसी विचारधारा है जो किसी राष्ट्र के प्रति व्यक्तियों की पहचान, समर्पण और एकता को बढ़ावा देती है। राष्ट्रवाद का उद्देश्य राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना, स्वाभिमान को जगाना और सामूहिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनता को एकजुट करना है। भारत में भी राष्ट्रवाद की उत्पत्ति इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के परिणाम स्वरुप हुई है। साम्राज्यवादी इतिहासकार भारतीय राष्ट्रवाद को अंग्रेजों की देन मानते हैं, चूंकि भारत में राष्ट्रवाद का उदय एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था, जो 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ भारतीय समाज की सामूहिक चेतना के विकास से ही प्रेरित था। किंतु ऐसा नहीं है कि भारत में अंग्रेजों के आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद जैसी भावना नहीं थी । प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद ने राष्ट्रवाद को भिन्न ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है। राष्ट्रवाद के लिए राष्ट्रीयता शब्द का प्रयोग करते हुए उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध "पुराना जमाना, नया जमाना" में लिखा है-

"वर्तमान सभ्यता का सबसे अच्छा पहलू राष्ट्रीयता की भावना का जन्म लेना है। उसे इस पर गर्व है और उचित गर्व है। लेकिन पुराने जमाने में भी राष्ट्रीयता की भावना बिल्कुल लुप्त न थी। यूनान और ईरान की लड़ाइयां, स्पेन और अरब की लड़ाइयां, हिंद और अफगानिस्तान के झगड़े किसी-ने-किसी हद तक राष्ट्रीयता के उदय और राष्ट्र के गौरव पर आधारित थे, लेकिन आधुनिक सभ्यता ने इस भावना को एक संगठित, अनुशासित, एकताबद्ध और व्यवस्थित रूप दे दिया है। पुराने जमाने में इसका बोध विशेष अवसरों पर होता था। किसी अपमान का बदला, किसी ताने की चुभन या केवल वीरता का प्रदर्शन और विजय बनाने का उत्साह कुछ व्यक्तियों को एकता की डोर में बाँध देता था, लेकिन उबाल के उतरते ही, तूफान का जोर खत्म होते ही अलग-अलग तत्व अपने स्वाभाविक स्थिति पर आ जाते थे और कुछ दिनों बाद इन लड़ाईयों की याद भी खत्म हो जाती थी और जिंदा रहती थी तो कविश्वरों के कवित्तों में"।

भारत में राष्ट्रवाद की संगठित अभिव्यक्ति 19वी सदी के उतरार्द्ध में देखने को मिलती है और इसका चरम 20वी सदी के शुरुआत मे देखने को मिलता है। और इसी दौरान भारत में सिनेमा का आगमन होता है । भारत की पहली फिल्म "राजाहरिश्चंद्र" को माना जाता है । हालांकि सन् 1897 से ही भारत में फिल्में बनना शुरू हो गई थी जैसे "ए पैनोरमा ऑफ इंडियन सीन्स" , "ट्रेन अराइविंग एट बाम्बे स्टेशन" , "पूना रेसेज" (1898), "दिल्ली दरबार" (1902), "ग्रेट बंगाल पार्टिशन मूवमेंट" (1905), "तिलक विजिट टू कैलकटा एंड प्रोसेशन" ये फिल्में जैसा कि इनके नाम से ही जाहीर है, महत्वपूर्ण घटनाओं की कैमरा रिकार्डिंग मात्र थी । फिर भी इन अल्पावधि के चलचित्रों के प्रभाव को आम जनता के मानस पटल पर गहरी छाप छोड़ते देखा गया । जुलाई 1896 के टाइम्स ऑफ़ इंडिया में उल्लेखित है कि जब लुमियर बंधुओं ने "7 जुलाई, 1896 को मुंबई (तत्कालीन बंबई) के वाटसन होटल में भारत में चलती-फिरती तस्वीरों का पहला सार्वजनिक प्रदर्शन आयोजित किया। इस कार्यक्रम में लूमिएर बंधुओं की छह लघु फिल्में प्रदर्शित की गई थीं। उसमे से एक चलचित्र था *"Arrival of a Train at La Ciotat Station"* एक रेलगाड़ी के स्टेशन में प्रवेश करने का दृश्य - इसे देखकर दर्शक चकित हो गए थे, क्योंकि ऐसा लगा जैसे ट्रेन सीधे उनकी ओर आ रही हो।

जब भारत में पहली चलचित्र राजा हरिश्चंद्र का निर्माण हुआ इस दौरान प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया था। यूरोप के तमाम देश जो सिनेमा की शक्ति को महसूस करने लगे थे, इसका प्रयोग युद्ध के समर्थित प्रसार रूप में करने के बारे में सोचने लगे । ब्रिटेन ने तो फिल्मों का इस्तेमाल बोलशेविज्म के प्रचार के खिलाफ एक अस्त्र के रूप में भी करने का प्रयास किया। और भारत में भी यह वह दौर था जब गांधी जी का आगमन हो चुका था स्वदेशी आंदोलन, असहयोग आंदोलन ने संपूर्ण देश को अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा कर दिया था। और शायद यही वजह थी कि ब्रिटिश शासन ने 1918 में ही इंडियन सिनेमैटोग्राफ एक्ट लागू कर दिया । हालांकि एक्ट में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा गया था किंतु प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से राजनीतिक आंदोलन , व्यक्तियों या घटनाओं का चित्रण नहीं किया जा सकता था । इसके पूर्व 1876 में ब्रिटिश सरकार, के लॉर्ड नॉर्थब्रुक के द्वारा मंच से राजद्रोह को प्रदर्शित करने वाले दृश्यों को समाप्त करने के लिए **नाटक प्रदर्शन अधिनियम** लागू किया गया । यानि ब्रिटिश सरकार कला माध्यमों की शक्ति से भली-भांति अवगत थी ।

यह पूर्व अनुभव बताता है कि सिनेमा जैसे नए जनसंचार माध्यम की क्षमता को लेकर औपनिवेशिक सत्ता की चिंताएँ स्वाभाविक थीं।

भारत के प्रारंभिक सिनेमा को दो श्रेणी में बांटा जा सकता है, प्रथम श्रेणी किसी मध्ययुगीन संत या शासक पर आधारित फिल्म होती थी , द्वितीय श्रेणी किसी सामाजिक समस्या पर आधारित होती थी। प्रथम श्रेणी की फिल्मों में मुख्य रूप से दादा साहब फाल्के द्वारा निर्मित पौराणिक धार्मिक कथाओं पर आधारित फ़िल्मे थी जैसे - मोहिनी भस्मासुर, सत्यवान सावित्री, लंका दहन (1916), कृष्ण जन्म (1918), कलिया मर्दन (1919) आदि । प्रारंभ की भी कुछ फिल्में इतनी ज्यादा प्रभावशाली थी कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हें प्रतिबंधित कर दिया । जैसे- कांजीभाई भाई द्वारा निर्मित 1921 में "भक्त विदुर" नामक फिल्म , इसे अंग्रेजी द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था क्योंकि इस फिल्म का मुख्य पात्र महात्मा गांधी की तरह दिखता था। जो अंग्रेजों के मुताबीत भारतीय जनता मे ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ विद्रोह खड़ा कर सकता था ।

द्वितीय श्रेणी की फिल्में जिसमें सामाजिक मुद्दों पर आधारित फिल्म होती थी । जैसे - छुआछूत और जात-पात पर "अछूत कन्या" (1936), "सुजाता", "आदमी", हिंदू विधवाओं की समस्या पर "बाल योगिनी" (1936), सांप्रदायिक समस्या पर आधारित "पड़ोसी" (1941) आदि । फिल्म "पड़ोसी" के बारे में कहा जाता है कि जब भागलपुर में दंगे भड़क रहे थे, उस दौरान इस फिल्म का प्रदर्शन किया गया और इसका प्रभाव इतना था कि शहर में हो रहे सांप्रदायिक दंगे समाप्त हो गए। ऐतिहासिक गर्व को प्रदर्शित करने व देश के लोगों को समृद्ध इतिहास से परिचित करवाने के लिए भी कई निर्माता निर्दोष ने फिल्म बनाई जैसे "सिकंदर" और "पुकार" । स्वतंत्रता प्राप्ति के अंतिम पायदान पर भी समकालीन निर्देशक वी.शांताराम की "डॉक्टर कोटनीस की अमर कहानी" जो कि चीनी राष्ट्रवादी की सहायता के लिए कांग्रेस द्वारा भेजे गए चिकित्सा दल के सदस्य डॉक्टर की सच्ची कहानी थी।

आजादी के बाद भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहे जाने वाले , 1857 की क्रांति पर भी कई फिल्मों का निर्माण हुआ। जैसे- 1946 में मोहन सिन्हा द्वारा निर्मित फिल्म "1857" यह मुक्ति संग्राम पर बनने वाली पहली फिल्म थी । हालांकि आज इस फिल्म की जानकारी नहीं है। इसके अतिरिक्त 1977 में सत्यजीत रे ने "शतरंज के खिलाड़ी", 1978 में श्याम बेनेगल ने "जुनून" और 2005 में केतन मेहता ने "मंगल पांडे: दि राइजिंग" का निर्माण किया।

भारत की आज़ादी की लड़ाई को प्रदर्शित करने वाली कुछ अन्य फ़िल्मे भी है जो न केवल देशभक्ति की भावना को जगाता है, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास और उसके नायकों की भी याद दिलवाता है। जैसे :

"भगत सिंह" (1954), निर्देशक - जगदीश गौतम, "शहीद" (1965), निर्देशक - एस. राम शर्मा, द लीजेंड ऑफ भगत सिंह (2002) निर्देशक - राजकुमार संतोषी । यह फ़िल्मे भगत सिंह के जीवन और उनके क्रांतिकारी कार्यों, बलिदान को विस्तार से दर्शाती है।

सरदार (1993), निर्देशक- केतन मेहता, यह फिल्म भारत के लौह पुरुष सरदार पटेल के जीवन और उनके योगदान को दर्शाती है।
गांधी (1982), निर्देशक - रिचर्ड एटनबरो, यह फिल्म महात्मा गांधी के जीवन और उनके अहिंसक आंदोलन को दर्शाती है।
नेताजी सुभाष चंद्र बोस: द फॉरगॉटन हीरो (2005), निर्देशक - श्याम बेनेगल , यह फिल्म नेताजी सुभाष चंद्र बोस के जीवन और उनके योगदान को दर्शाती है।
रंग दे बसंती (2006), निर्देशक - राकेश ओमप्रकाश मेहरा , यह फिल्म भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायकों और आधुनिक युवाओं के संघर्ष को जोड़ती है।
सरदार उधम (2021), निर्देशक - शूजित सरकार, यह फिल्म भारतीय स्वतंत्रता सेनानी सरदार उधम सिंह के जीवन और उनके बलिदान को दर्शाती है।

समांतर सिनेमा भारतीय सिनेमा की एक ऐसी धारा है जो मुख्यधारा के व्यावसायिक सिनेमा से अलग होकर यथार्थवादी और सामाजिक मुद्दों को गहराई से उठाती है। इन फ़िल्मों में प्रतीकात्मक तत्वों का इस्तेमाल होता है । यह फ़िल्मे भारतीय राष्ट्रवाद के समाप्त होते तत्वों को फिर से उजागर करने का प्रयास करती है । ये फिल्में न केवल यथार्थवादी कहानियों को प्रस्तुत करती हैं, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं को गहराई से उजागर करती हैं, जिससे दर्शकों को सोचने और विचार करने के लिए प्रेरित किया जा सके। समानांतर फिल्मों के कुछ उदाहरण -
पाथेर पांचाली (1955), निर्देशक - सत्यजीत रे , यह फिल्म अपू त्रयी की पहली कड़ी है और एक गरीब बंगाली परिवार की कहानी को दर्शाती है। जो ग्रामीण जीवन, गरीबी और मानवीय संबंध को प्रदर्शित करती है ।
अपराजितो (1956), निर्देशक - सत्यजीत रे, यह फिल्म अपू त्रयी की दूसरी कड़ी है और अपू के शहर में आने के बाद के संघर्षों को दर्शाती है।
दो बीघा जमीन (1953), निर्देशक - बिमल रॉय, यह फिल्म एक किसान की कहानी है, जो अपनी जमीन बचाने के लिए शहर में मजदूरी करने जाता है।
सुजाता (1959), निर्देशक - बिमल रॉय, यह फिल्म जाति व्यवस्था और सामाजिक भेदभाव को दर्शाती है कहानी एक दलित लड़की और एक उच्च जाति के परिवार के बीच के संबंधों को दर्शाती है।
अंकुर (1974), निर्देशक - श्याम बेनेगल , इस फिल्म का मुख्य मुद्दा जाति व्यवस्था, सामंतवाद और सामाजिक अन्याय है । यह फिल्म एक दलित महिला और एक उच्च जाति के व्यक्ति के बीच के संबंधों को दर्शाती है।
अर्ध सत्य (1983), निर्देशक - गोविंद निहलानी , यह फिल्म एक पुलिस अधिकारी के नैतिक संघर्ष और भ्रष्ट व्यवस्था के साथ उसके टकराव की कहानी है।
दामुल (1985), निर्देशक - प्रकाश झा, यह फिल्म बिहार के ग्रामीण इलाकों में जाति व्यवस्था और गरीबी की समस्याओं को उजागर करती है।

मिर्च मसाला (1987), निर्देशक - केतन मेहता, यह फिल्म सामाजिक अन्याय, महिला सशक्तिकरण और ग्रामीण भारत की समस्याएं को प्रदर्शित करती है ।

सलाम बॉम्बे (1988), निर्देशक - मीरा नायर यह फिल्म बाल श्रम, गरीबी और शहरी समस्याएं को प्रदर्शित करती है। कहानी मुंबई की सड़कों पर रहने वाले बच्चों की है।

निष्कर्ष

बेनेडिक्ट एंडरसन के अनुसार "मुद्रण तकनीक ने एक साझा भाषा और संस्कृति को फैलाने में मदद की जिससे लोगों के बीच एक सामूहिक पहचान विकसित हुई है"। सिनेमा एक शक्तिशाली माध्यम है जो विचारधाराओं, भावनाओं, और सामाजिक संरचनाओं को प्रभावी ढंग से व्यक्त करता है। राष्ट्रवाद और सिनेमा के बीच संबंध गहरे और जटिल हैं, क्योंकि सिनेमा ने राष्ट्रवाद को प्रचारित करने, सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करने, और जनता को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजों के सत्ता के कारण खुलकर राजनीतिक जागरूकता वाली फिल्में नहीं बन सकती थी। इसलिए राष्ट्रीय और जनोन्मुखी भावनाओं को सांकेतिक रूप में व्यक्त करने की कोशिश की गई जैसे सन 1942 की फिल्म "किस्मत" का - दूर हटो ए दुनिया वालो हिंदुस्तान हमारा है जैसे गीत ने अंग्रेजों के प्रति अपनी भावना व्यक्त की हालांकि यह गीत अंग्रेजों को अपने पक्ष में दिखा इस वजह से इस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया।

इस प्रकार हम देखेते है कि भारतीय सिनेमा ने राष्ट्रवाद को क्रमबद्ध रूप से चित्रित किया है । शुरुआती दौर में धार्मिक और पौराणिक कथाओं से शुरुआत करते हुए भारत के समृद्ध इतिहास को आम जनता के सामने लाया गया। फिर सामाजिक समस्याओं को उजागर करने वाली फिल्मों का निर्माण किया गया । उसके बाद भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की घटनाओं, व्यक्तियों के संघर्ष को दर्शाने वाली फिल्मों का निर्माण किया गया । और सिनेमा की यह संदेश देने की प्रक्रिया आज के पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भी लगातार कायम है जो कि समाज मे हमेशा एकजुट होने का भाव पैदा करते रहेगा ।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. चड्डा, मनमोहन (2021), *हिन्दी सिनेमा का इतिहास* , नई दिल्ली , सचिन प्रकाशन
2. भास्कर, डॉ. कुमार (2021), *राष्ट्रीयता और हिंदी सिनेमा*, दिल्ली, संजय प्रकाशन
3. डॉ. गुप्त, चंद्रभूषण 'अंकुर' (2012), *सिनेमा और इतिहास*, गाजियाबाद, शशि प्रकाशन
4. श्रीवास्तव, संजीव (2014), *समय, सिनेमा और इतिहास; हिंदी सिनेमा के सौ साल*, सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, प्रकाशन विभाग
5. सिन्हा, प्रसून (2019), *भारतीय सिनेमा एक अनंत यात्रा; सिनेमा देश काल और समाज एक अध्ययन*, दिल्ली, श्री नटराज प्रकाशन
6. प्रेमचंद रचनावली, भाग-7, जनवाणी प्रकाशन
7. पारख, जवरीमल्ल (2021) , *हिन्दी सिनेमा मे बदलते यथार्थ की अभिव्यक्ति*, दिल्ली, नई किताब प्रकाशन

8. योजना, (अगस्त1995) *सिनेमा और समाज (विशेषांक)*, प्रकाशन विभाग, सुचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार